चुनाव और मुखौटे

गुजरात विधान सभा चुनाव के दौरान नरेन्द्र मोदी के मुखौटों का जम कर इस्तेमाल किया गया। चुनाव की नौटंकी में यह तमाशा पहली बार पेश किया गया था। यह दर्शकों यानी वोटरों को रिझाने में काफी सफल रहा। जहां देखें, वहीं मोदी का मुखौटा लगाये उनके समर्थक चुनाव प्रचार कर रहे थे। मोदी के चुनाव जीतने पर इन मुखौटाधारियों ने सड़कों पर जमकर जश्न मनाया।

बाद में स्वयं मोदी ने भी एक इंटरव्यू में यह स्वीकार किया कि मुखौटों का इस्तेमाल करने की योजना बहुत ही सोच-समझकर बनाई गई थी और यह पूरी तरह कामयाब रही। गुजरात चुनाव के दौरान सिर्फ मोदी के मुखौटे ही छाये रहे। भाजपा के दूसरे बड़े नेताओं के मुखौटे नजर नहीं आये। इसकी वजह यह है कि गुजरात में सिर्फ मोदी का ही सिक्का चलता है। मोदी ने भाजपा के दूसरे बड़े नेताओं को स्पष्ट संकेत दे दिया कि गुजरात में चुनाव वे सिर्फ और सिर्फ अपने दम पर जीतते हैं।

आम चुनावों को राजनीतिक दलों और साथ ही मीडिया ने भी एक मनोरंजक तमाशा बना दिया है। नेताओं द्वारा चुनाव प्रचार में गंभीरता नाम की चीज रह नहीं गई है। चुनाव प्रचार के लिए कहीं नर्तकियों का नाच करवाया जाता है तो कहीं बॉलीवुड सितारों का रोड शो आयोजित किया जाता है।

कई बार ऐसी खबर आ चुकी है कि चुनावों के दौरान मुंबई से विस्थापित बार गर्ल्स की डिमांड बढ़ जाती है।

बहरहाल, आने वाले विधान सभा चुनावों और लोक सभा चुनाव में लोगों को मुखौटों का जोरदार तमाशा देखने को मिलेगा। अखबारों में खबर छपी है कि भाजपा, कांग्रेस, समाजवादी पार्टी सहित और भी कई दल अपने नेताओं के मुखौटे बनवाने का इंतजाम करने में लग गये हैं। कहा जा रहा है कि चीन में मुखौटे बनाने वाली किसी कंपनी को भारी संख्या में नेताओं के मुखौटे बनाने का ऑर्डर दिया गया है। लेकिन चूंकि चीन से मुखौटों के बन कर आने में समय लगेगा, इसलिए लोकल कंपनियों को भी मुखौटे बनाने का ऑर्डर दिया जा रहा है। तरह-तरह के मुखौटे बनेंगे, कुछ टिकाऊ तो कुछ कागज एवं प्लास्टिक के, जल्दी ही बेकार हो जाने वाले।

चुनाव प्रचार में मुखौटों का इस्तेमाल किये जाने से अब ये ही नेताओं की लोकप्रियता और उनकी वरिष्ठता के मानदंड होंगे। जिस नेता के जितने ज्यादा मुखौटे बिकेंगे, वह सबसे ज्यादा लोकप्रिय माना जायेगा। कांग्रेस में जहां सोनिया और युवराज राहुल के मुखौटों पर जोर रहेगा, वहीं कुछ अन्य प्रमुख नेताओं के मुखौटे सामने आ सकते हैं।

जहां तक प्रमुख विरोधी दल भाजपा का सवाल है तो इसके कई नेताओं के मुखौटे तैयार हो रहे हैं। पीएम इन वेटिंग लालकृष्ण आडवाणी और पार्टी अध्यक्ष राजनाथ सिंह के मुखौटे तो होंगे ही, पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के मुखौटे भी चुनाव प्रचार के दौरान दिखाई पड़ सकते हैं। और किन-किन नेताओं के मुखौटे बनेंगे, इस पर विवाद और असमंजस की स्थिति है। कई दलों में इसे लेकर एक-दूसरे का सिर फोड़ने की तैयारी हो रही है।

कांग्रेस और भाजपा में उम्मीदवारी का टिकट बेचने-खरीदने को लेकर सिर-फुड़ौव्वल चल ही रहा है, मुखौटों को लेकर मारामारी शुरू होने की पूरी संभावना है।

सपा में मुलायम और अमर सिंह के मुखौटे ही होंगे, दूसरा कोई नेता ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जिसके मुखौटे बन सकें।

राष्ट्रीय जनता दल में सिर्फ लालू और राबड़ी के मुखौटे ही चलेंगे, यह निर्विवाद है।

देखना यह है कि प्रधानमंत्री पद की एक और दावेदार मायावती अपने मुखौटे बनवाती हैं या नहीं? उनके साथ वामपंथी दल हैं। वैसे मायावती ने तो जीते-जी अपनी आदमकद प्रतिमा ही स्थापित करवा दी। फिर मर्द अगर मायावती के मुखौटे लगा कर डांस करते हुए चुनाव प्रचार करेंगे तो यह अच्छा नहीं लगेगा। हां, महिलायें चाहें तो मायावती के मुखौटे लगा कर नाच-गा सकती हैं।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में जनता दल (यूनाइटेड) के नेताओं के मुखौटे भी अवश्य ही बनेंगे। इसमें भी रगड़ा संभव है। वैसे शरद यादव ने जार्ज फर्नांडीस को पहले ही ठिकाने लगा दिया है।

लोक जनशक्ति पार्टी में स्पष्ट है कि रामविलास पासवान को छोड़ कर और किसी का मुखौटा बन ही नहीं सकता।

वाह, क्या अद्‌भुत दृश्य होगा। सभी राजनीतिक दलों के नेताओं के मुखौटे पहने उनके समर्थक जब गलियों में और सड़कों पर नाचते हुए चुनाव प्रचार करने को निकलेंगे तो इससे छोटे-छोटे बच्चों का अच्छा मनोरंजन होगा।

भाजपा में ही देश के पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी को मुखौटा कहा गया था। और भाजपा के ही मोदी ने चुनाव प्रचार के लिए पहली बार मुखौटों का इस्तेमाल किया। अब उसी नक्शे कदम पर सभी दल चल पड़े हैं। पर इस बार पीएम इन वेटिंग लालकृष्ण आडवाणी ने हैदराबाद में एक रैली के दौरान धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा निशाना साधते हुए अपनी तस्वीर खिंचवाई है। पता नहीं, इससे वे जनता-जनार्दन को क्या संदेश देना चाहते हैं?

बहरहाल, इस बार चुनाव प्रचार में मुखौटे ही मुखौटे होंगे। असली चेहरा छुपाने की नेतागण पूरी कोशिश करेंगे।

पर जनता नेताओं का मुखौटा पहनने के पहले उनके असली चेहरे को भी देख ले तो उसका कुछ भला होगा। अन्यथा मुखौटों की भीड़ में नेताओं की पहचान कर पाना संभव नहीं होगा।

नेताओ की भीड़ में केवल मुखौटाधारी ही नहीं और भी जमूरे शामिल हैं।

■ गरीबदास

जनता नेताओं का मुखौटा पहनने के पहले उनके असली चेहरे को भी देख ले तो उसका कुछ भला होगा। अन्यथा मुखौटों की भीड़ में नेताओं की पहचान कर पाना संभव नहीं होगा।

अफगानिस्तान में संकटग्रस्त अमेरिकी साम्राज्यवाद

अपने देश में वित्तीय संकट से घिरे अमेरिकी साम्राज्यवादी बाहर भी चैन की सांस नहीं ले पा रहे हैं। अफगानिस्तान में उनकी स्थिति दिनोंदिन संकटपूर्ण होती जा रही है।

पिछले दिनों खबर आई कि तालिबान राजधानी काबुल के बहुत नजदीक पहुंच गये हैं। इतना नजदीक वे पहले कभी नहीं पहुंचे थे। यह भी खबर है कि अमेरिकियों और उनकी कठपुतली करजई ने तालिबान से बातचीत करने की कोशिश की है। करजई ने तालिबान के सुप्रीम कमांडर मुल्ला उमर को बातचीत के लिए खुला आमंत्रण दिया।

करजई और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए यह विकट स्थिति तब है जब वे पाकिस्तान के सीमावर्ती क्षेत्र में लगातार हमले कर रहे हैं। इन हमलों को लेकर खुद पाकिस्तानी शासकों के बीच भारी तनाव पैदा हो गया है। मामले ने इतना तूल पकड़ा कि पाकिस्तानी सरकार को अमेरिकी सरकार से औपचारिक विरोध दर्ज कराना पड़ा।

इस साल के शुरू से ही अफगानिस्तान में तालिबान और अन्य विद्रोहियों के हमले काफी तेज हो गये। हालात यहां तक पहुंच गये कि कुछ अमेरिकी सैनिकों को इराक से निकाल कर अफगास्तिान में लगाना पड़ा। लेकिन इससे स्थिति में सुधार नहीं हुआ। वह लगातार बिगड़ती गई। इस वर्ष अक्टूबर माह में अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा अफगानिस्तान पर हमले को सात साल पूरे हो गये हैं। सात साल पहले उन्होंने ट्विन टावर्स पर हमले का बहाना बनाकर अफगानिस्तान पर धावा बोला था। बहाना यह था कि तालिबान शासन ट्विन टावर्स पर हमले के दोषी ओसामा बिन लादेन और उसके संगठन अल कायदा को पनाह दे रहा है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तालिबान अमेरिकी साम्राज्यवादियों की अप्रत्यक्ष मदद से सत्तासीन हुए थे। तालिबान की दो प्रमुख समर्थक पाकिस्तान और सऊदी अरब की सरकारें थीं और दोनों अमेरिकापरस्त थीं।

2001 में अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने सोचा था कि अफगानिस्तान पर कब्जा कर तुरंत इराक पर कब्जे के लिए कूच कर देंगे। उन्होंने किया भी यही। अफगानिस्तान पर हमले के डेढ़ साल बाद उन्होंने इराक पर धावा बोल दिया। लेकिन तब से आज तक का समय अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए दु:स्वप्न ही साबित हुआ है। अफगानिस्तान पर अमेरिका के हमले के सात साल हो गये हैं। गौरतलब है कि सोवियत सेना अफगानिस्तान में कुल दस साल रही। इस तरह अमेरिकी साम्राज्यवादी उस अवधि के काफी नजदीक पहुंच गये हैं। बीते सात सालों में बहुत कुछ बदल गया है। तब का उद्धत जार्ज बुश आज भीगी बिल्ली बना हुआ है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की इक्कीसवीं सदी की हवा निकल चुकी है। आज उनकी अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दिवाला निकल रहा है और वे किसी तरह अर्थव्यवस्था संभालने में लगे हुए हैं। उनका सारा विजयोल्लास गायब हो चुका है। साम्राज्यवादी मिसाइलों पर चढ़कर जार्ज बुश जितना ऊपर उड़ा था, उतने ही रसातल में पहुंच चुका है। इन हालात में अफगानिस्तान में साम्राज्यवादी कब्जे के खिलाफ लड़ रहे विद्रोहियों का हौसला बढ़ना स्वाभाविक है। इसमें दिक्कत की बात यही है कि इनमें तालिबान प्रमुख शक्ति है। तालिबान के पिछले शासन ने दिखाया था कि वे किस कदर कट्टरपंथी हैं और कैसे समाज को पीछे ले जाना चाहते हैं। लेकिन तब भी साम्राज्यवादियों के बाहर धकेले जाने के बाद निश्चित ही वह माहौल बनेगा जिसमें तालिबान को चुनौती दी जा सकेगी। इस तरह तालिबान को चुनौती देने के लिए भी साम्राज्यवादियों की पराजय जरूरी है। ■

वित्तमन्त्री के घड़ियाली आंसू

राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में वित्त मन्त्री पी. चिदम्बरम ने स्वीकार किया कि देश की सार्वजनिक वितरण प्रणाली ध्वस्त हो चुकी है। एक अध्ययन के अनुसार गरीबों तक एक रुपया पहुंचाने के लिए सरकार को 3 रुपये 65 पैसे खर्च करना पड़ रहा है। 58 प्रतिशत सब्सिडीयुक्त अनाज उन लोगों तक नहीं पहुंच पाता और 36 प्रतिशत आपूर्ति श्रृंखला से निकाल लिया जाता है। हम हाथ पर हाथ धरे गरीबों को मिलने वाली इस थोड़ी-सी राशि को लुटते हुए कैसे देखते रह सकते हैं?

इस तरह की स्वीकारोक्ति करने वाले चिदम्बरम कोई पहले नेता नहीं हैं। देश की जनता को क्या मिलता है, यह जानने के लिए जनता मंत्रियों के खोखले बयानों की मुहताज नहीं है। बल्कि वह तो यह भी जानती है कि उसके धन को कौन लोग लूट कर खा रहे हैं।

दिल्ली में बढ़ती भ्रूण हत्या

देश का दिल कहलाने वाले दिल्ली शहर में लिंग परीक्षण व भ्रूण हत्या का अनैतिक और अमानवीय कुकर्म धड़ल्ले से जारी है।

समाज को नरक में धकेलने वाले इस सामाजिक अपराध से सम्बन्धित एक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर हुए हैं। दिल्ली के नरेला इलाके में प्रति 1000 पुरुषों पर 828 महिलाएं तथा पंजाबी बाग और नजफगढ़ में प्रति 1000 पुरुषों पर क्रमश: 828 और 842 महिलाएं हैं। अध्ययन के दौरान पूछे गये सवालों के जवाब में ज्यादातर लोगों ने बताया कि पुराने रीति-रिवाज और परिवारिक परम्पराएं ही भ्रूण हत्याओं की ज्यादातर वारदातों के लिए जिम्मेदार हैं।

हमारे देश में ऐसी कई निराधार मान्यताएं हैं जो समाज को रोज-ब-रोज पीछे धकेल रही हैं। हमारे यहां आम मान्यता है कि किसी की मृत्यु के बाद पुत्र द्वारा अन्तिम क्रिया करने से ही उसकी आत्मा को मोक्ष प्राप्त होता है। कोई इनसे पूछे कि पश्चिमी देशों में जहां ऐसी कोई सोच नहीं है, उन देशों में क्या सारी मृत आत्माएं भटकती रहती हैं? अगर ऐसा होता तो कालान्तर में वहां मनुष्यों से कई गुना अधिक संख्या में प्रेतात्माएं होतीं और इन्सानों का जीना ही दूभर कर देतीं।

पुत्र ही वंश का नाम आगे बढ़ाता है, यह भी ऐसी मान्यता है जिसे सुनकर हंसी भी आती है और गुस्सा भी। लोग उस वंश का नाम आगे बढ़ाने की चिन्ता में व्याकुल रहते हैं, जिसकी चार पीढ़ी पहले वाले पुरखों के नाम पूछो तो वे खुद ही बगलें झांकने लगते हैं। पता नहीं ऐसे लोग अपने वंश को गुलाम वंश, खिजली वंश, मौर्य वंश, शुंग वंश का समझते हैं या गांधी-नेहरू वंश का जिसे चलाने के लिए अजन्मी बेटियों का वध करना जरूरी है।

विज्ञान, तकनालोजी, तर्कपरकता और आधुनिक जरूरतों के चलते पुरानी मान्यताओं को टूटना चाहिए था, लेकिन जर्जर सामाजिक मान्यताओं की कोढ़ में आर्थिक तंगी ने खाज का काम किया। महंगी होती शिक्षा, परिवार का दिवाला निकाल देने वाली खर्चीली शादी, दूल्हों का बढ़ता बाजार भाव और शादी के बाद भी भैया दूज, तीज-चौथ और हर मौके पर खर्च, लड़की पैदा होने पर भविष्य के स्थायी संकट का आभास करा देते हैं। इसकी परिणति स्त्री भ्रूण हत्या के रूप में होती है।

स्त्रियों की मुक्ति और स्त्री-पुरुषों के बीच बराबरी के लिए यह जरूरी है कि सड़ी-गली परम्पराओं और रूढ़ियों के खिलाफ आपस में मिल-जुल कर संघर्ष किया जाये। ■